पालि और प्राकृत

डॉ. ब्रह्मदेव नारायण शर्मा

श्रमण संस्कृति की दो मुख्य धाराएँ हैं। बौद्ध एवं जैन। इन दोनों धाराओं के वाहक भगवान् बुद्ध तथा भगवान् महावीर रहे। भगवान् बुद्ध ने जो कुछ भारतीय संस्कृति को प्रदान किया वह सब पालि में हैं, तथा भगवान् महावीर ने प्राकृत के माध्यम से भारतीय जनमानस को आप्लावित किया। इन दोनों महापुरुषों के अमृतोपम सन्देश का वाहक पालि एवं प्राकृत भाषाएँ रहीं जो न केवल भारत को वरन् विश्व को आचरण, तप, त्याग एवं वैराग्य की शिक्षा प्रदान करने में समर्थ रहीं। इन्हीं के माध्यम से कोटि-कोटि लोगों ने अपने को दुःख की ज्वाला से निकाल कर शान्त एवं शीतल निर्वाण को प्राप्त किया।

इन दोनों भाषाओं में कौन सी ऐसी विशेषताएँ थीं, जिसके कारण दोनों महापुरुषों ने इनको अपने उपदेश एवं विचार का माध्यम बनाया। यदि इस बात पर विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि इन दोनों महापुरुषों को सम्पूर्ण मानवता के प्रति गहरी सम्वेदना थी, जिसके कारण इन्होंने अपना विचार ऐसी भाषा के माध्यम से व्यक्त करना चाहा जिसे अधिक से अधिक जन सामान्य समझ सके और उनसे लाभ उठा सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों महापुरुषों ने जनसाधारण की बोली में जो उस समय प्रचलित थी (पालि-प्राकृत) उसमें अपना उपदेश देना श्रेयष्कर समझा। उसी जन भाषा में अपना-अपना विचार व्यक्त किया। प्रस्तुत प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि दोनों महापुरुषों के उपदेश बहुत दिनों तक मौखिक ही रहे। कालान्तर में लिपिबद्ध हुए। संभवतः इसी के फलस्वरूप उन भाषाओं में अनेकरूपता दिखाई पड़ती है। यद्यपि भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध से ज्येष्ठ थे और उनकी परम्परा भी पूर्व से ही कायम थी, पर जैनागमों का संकलन पालि बौद्धागमों के बाद में हुआ। इतिहास से यह ज्ञात है कि पालि त्रिपिटक का संकलन ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हो गया था पर जैनागमों का संकलन और लेखन ईसा की ५वीं-छठीं शती में हुआ। इन दोनों महापुरुषों से पूर्व जिस भाषा का बोलबाला था वह वैदिक संस्कृत थी। जैसा कि भाषाविदों ने बताया है कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के अन्तर्गत वैदिक संस्कृत का स्थान था। इन्ही भाषाओं में विज्ञजन वार्तालाप भी करते थे पर जन सामान्य के लिए भी उस समय कोई बोली अवश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी। वैदिक भाषा दुरूह थी, इसी दुरूहता के कारण प्राचीन आर्य भाषा में अनेक परिवर्तन हुए और इसी परिवर्तन के कारण मध्य भारतीय आर्य भाषा का उदय हुआ जिससे पालि-प्राकृत आदि भाषाएँ निकलीं। यहाँ पालि एवं प्राकृत के स्वरूप को समझाने के लिए उन परिवर्तनों पर विचार करना समीचीन होगा।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की ऋ, ऌ ध्वनियाँ समाप्त हो गईं। ऐ और औ के स्थान पर ए एवं ओ का प्रयोग होने लगा। अव, अय ध्वनि-समूहों का स्थान ए, ओ ध्वनियों ने ले लिया। म् व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होने लगा। श्, ष् के स्थान पर केवल स का व्यवहार होने लगा। शब्द एवं धातु रूपों में भी परिवर्तन हुए। अनेक अजन्त एवं हलन्त प्रातिपदिकों के रूप अकारान्त प्रातिपदिकों के समान बनने लगे। सम्बन्धकारक के एक वचन में जो रूप अश्वस्य, मुनेः, साधोः तथा पितुः आदि थे वे अब असस्स, मुनिस्स, साधुस्स तथा पितुस्स आदि होने लगे। संज्ञा में भी सर्वनाम के रूपों का विधान होने लगा। धातुओं के रूपों में भी ह्रास हुआ। सनान्त तथा यङ्न्त के प्रयोगों में कमी आई। इन्हीं सब परिवर्तनों के कारण प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को एक नवीन रूप प्राप्त हुआ जिसे मध्य भारतीय भाषा के रूप में ग्रहण किया गया, और इसी मध्य भारतीय आर्यभाषा को पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, आदि कहा गया है।

प्राकृत का जो प्राचीन रूप प्राप्त होता है वह अशोक के शिलालेखों का है। ऐसा जान पड़ता है कि पालि या तत्कालीन लोकभाषा के तीन स्वरूप प्रचलित थे। पूर्वी, पश्चिमी और पश्चिमोत्तरी। इन्हीं बोलियों का विकास बाद में प्राकृतों के रूप में हुआ। मागधी एवं अर्द्धमागधी अशोककालीन पूर्वी बोली के, शौरसेनी पश्चिमी बोली के और पैशाची पश्चिमोत्तरी बोली के विकसित रूप हैं, ऐसा कहा जा सकता है। भरत मुनि के अनुसार सात प्रकार की प्राकृतें हैं जिन्हें, मागधी, अवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, बाह्लीका और दाक्षिणात्या कहा जाता है।[1] बाद में वैय्याकरण हेमचन्द्र ने पैशाची एवं लाटी को भी इसमें जोड़ दिया है। पर साहित्य की दृष्टि से चार प्रकार की प्राकृतें ही मुख्य हैं। वे हैं—मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। इनके साथ पालि का क्या सम्बन्ध रहा है यह विचारणीय है।

---

१. मागध्यवन्तिजा प्राच्या शूरसेन्यर्द्धमागधी।

बह्लीकदक्षिणात्याश्च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः ॥ —ना० शा० १७।४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालि और प्राकृत भाषाओं का ध्वनि-समूह प्रायः एक-सा है। ॠ, ॠ, ॡ, ऐ, एवं औ का प्रयोग पालि एवं प्राकृतों में समान रूप से नहीं पाया जाता है। इन दोनों भाषाओं में ऌ के स्थान पर अ, इ, उ स्वरों में से कोई एक हो जाता है। ह्रस्व ए तथा ओ दोनों में होते हैं। विसर्ग दोनों में नहीं होते। श्, ष् के स्थान पर दन्त्य स का ही प्रयोग देखा जाता है पर मागधी में तालव्य श ही होता है। मूर्द्धन्य ध्वनिक दोनों में ही पाये जाते हैं। शब्द के अन्तःस्थित अघोष स्पर्श के स्थान पर य्, व् का आगम दोनों में होता है। शब्द के अन्तःस्थित घोष महाप्राण की जगह 'ह' हो जाता है। शब्द के अन्तःस्थित अघोष स्पर्शों का घोष में परिवर्तन दोनों भाषाओं में पाया जाता है। इस प्रकार पालि एवं प्राकृत में समानता दिखाई पड़ती है।

प्रस्तुत प्रसंग में विचारणीय यह है कि पालि को प्रायः सभी विद्वानों ने 'मागधी' कहा है। आचार्य बुद्धघोष के समय से लेकर वर्तमान युग तक इसका मागधी नाम ही प्रचलित है। पर तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि पालि और मागधी में अन्तर है। जिस मागधी का विवेचन उत्तरकालीन प्राकृत वैयाकरणों ने किया है तथा जिसके स्वरूप का दर्शन कतिपय अभिलेखों या नाटक ग्रन्थों में होता है, उससे तो पालि निश्चय ही भिन्न है। मागधी भाषा के रूप की तीन मुख्य विशेषताएँ हैं। प्रत्येक र् और स् का क्रमशः 'ल्' और 'श्' में परिवर्तन हो जाना तथा पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंग अकारान्त शब्दों का प्रथमा विभक्ति एक वचन का रूप एकारान्त होना। पर पालि में ऐसा नहीं होता वरन् र् और ल् दोनों ध्वनियों के रूप वहाँ मिलते हैं। तथा एकारान्त न होकर ओकारान्त ही होता है। इस प्रकार अशोक के पश्चिमी शिलालेखों में राजा, पुरा, आरभित्वा जैसे प्रयोग मिलते हैं तो पूर्व के शिलालेखों में क्रमशः लाजा, पुलुवं, आलभितुं रूप देखे जाते हैं। स का श में परिवर्तन पालि में कभी नहीं होता। केवल अशोक के (मानसेहरा) के शिलालेख में इसका प्रयोग अवश्य हुआ है, जैसे प्रियद्रशिन, प्रियदर्शि, प्राणशतसहस्रानि आदि। परन्तु मागधी शकार बहुला है, वहाँ स, ष, दोनों का तालव्य 'श' हो जाता है, जैसे पुरुषः का 'पुलिशे' शुष्क का शुश्क। इसी प्रकार पालि में पुल्लिग और नपुंसक लिंग अकारान्त शब्दों के रूप प्रथमा विभक्ति एकवचन में क्रमशः ओकारान्त तथा अनुस्वरान्त होते हैं एकारान्त नहीं, पर अशोक के शिलालेखों में लाघुलोवादे, बुधे, 'मिगे' आदि रूप भी मिलते हैं। इन विभिन्नताओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे मौलिक न होकर एक ही सामान्य भाषा के प्रान्तीय या जनपदीय रूप हैं जो उच्चारणभेद से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न हो गये हैं ; अथवा अशोक के अभिलेखों की भाषा सामान्य राष्ट्रभाषा है जिसमें प्रादेशिक आवश्यकताओं के अनुरूप उच्चारण आदि में अल्प परिवर्तन हो गये हैं। मूल तो उन सबका एक ही है—मगध की राजभाषा मागधी, जिसमें भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश दिया था। दूसरी बात यह है कि भगवान् बुद्ध के उपदेश मौखिक थे और उनका संकलन उनके निर्वाण के दो तीन शताब्दियों के बाद हुआ। उनका लिपिबद्ध रूप तो प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व में हुआ। इसलिए इसमें अनेक परिवर्द्धनों और परिवर्तनों की सम्भावना हो सकती है।

पुनः अर्द्धमागधी और पालि के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन दोनों में अनेक समानताएँ हैं जैसे पुरे, सुवे, भिक्खवे, पुरिसकारे, दुक्खे आदि। शब्द दोनों में समान हैं। संस्कृत तद् के स्थान में से का होना जैसे तद्यथा का सेय्यथा। कहीं कहीं वर्ण-परिवर्तन का विधान भी समान दिखाई पड़ता है जैसे—

पालि	अर्द्धमागधी
सक्खि	सक्ख
थरू	थरू (छरू)
वेलु	वेलु
नंगल	नंगल

इस प्रकार संस्कृत यद् के स्थान में 'ये' का हो जाना तथा 'र' का 'ल' हो जाना अर्द्धमागधी की एक बड़ी विशेषता है जो पालि में सर्वत्र नहीं दिखाई पड़ती। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इसमें मागधी की आधी प्रवृत्तियाँ हैं तथा शेष प्रवृत्तियाँ शौरसेनी प्राकृत से मिलती हैं जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस भाषा का प्रचार मगध से पश्चिम प्रदेश में रहा होगा तथा इसका विकास आर्य भाषा के दूसरे स्तर से हुआ होगा।

कुछ विद्वानों ने पालि के ध्वनि समूह और रूप विधान की सबसे अधिक समानता शौरसेनी प्राकृत के साथ बताया है। उन विद्वानों का कहना है कि शौरसेनी में पुलिङ्ग अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन का रूप ओकारान्त होता है जैसे पुरिसो, बुद्धो, नरो आदि और यही प्रवृत्ति पालि की भी है। दूसरी विशेषता 'ष' का 'स' में परिवर्तन होना है। यह पालि में भी उसी प्रकार विद्यमान है। 'शब्द' का 'सद्द' पुरुष का 'पुरिस' धर्म का 'धम्म' कर्म का 'कम्म' पश्यति का 'पसति' पुत्र का 'पुत्त' आदि रूप पालि और शौरसेनी में एक जैसा ही है। शौरसेनी में शब्द के मध्य स्थित अघोष स्पर्शों का घोष स्पर्श में परिवर्तन हो जाना पालि में भी समान रूप से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाये जाते हैं—जैसे माकन्दिक से 'मागन्दिम' कचंगल से 'कजंगल' तथा अचिरवती से 'अजिरवती' दोनों में समान रूप से होते हैं। पर पालि में इसके विपरीत प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है—जैसे शब्द के मध्य में स्थित घोष स्पर्शों का अघोष हो जाना—यथा अगरू से अकलु, मुवंग से मुतिंग, कुसीद से कुसीत आदि। शौरसेनी पूर्वकालिक अव्यय में दूण प्रत्यय लगता है, जैसे पठिदूण, पालि में भी इसी अर्थ में 'तून' प्रत्यय देखा जाता है जैसे सोतून, कातून आदि। यह प्रवृत्ति केवल शौरसेनी में ही नहीं वरन् पैशाची प्राकृत में भी है, जैसे गन्तून, रन्तून, हसितून आदि। पेक्ख, गमिस्सति सक्किति जैसे रूपों में भी पालि और शौरसेनी में समानता है। पर कहीं-कहीं पालि शौरसेनी से नहीं भी मिलती है, जैसे शौरसेनी में वर्तमान काल के प्रथम पुरुष एकवचन के क्रिया रूपों के अन्त में 'दि' का प्रयोग देखा जाता है जैसे 'करेदि' 'गच्छेदि' जब कि पालि में करोति और गच्छति रूप ही होता है। इस प्रकार शौरसेनी के साथ पालि के सम्बन्ध को देखा गया तथा यह ज्ञात हुआ कि ध्वन्यात्मक और रूपात्मक समानता होते हुए भी इसमें असमानताएँ भी हैं। महाराष्ट्री भी शौरसेनी का विकसित रूप है। इसे अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है। इसी प्रकार पालि और पैशाची प्राकृत में जो समानताएँ हैं, उनको इस प्रकार दिखाया जा सकता है, यथा घोष स्पर्शों (ग्, द्, व) के स्थान में अघोष स्पर्श (क्, त्, प) का होना। शब्द के मध्य स्थित व्यञ्जन का सुरक्षित रहना। भरिय, 'सिनान' 'कसट' जैसे शब्दों में संयुक्त वर्णों का विश्लेषण पाया जाना। ज्ञ्, ण्य् और न्य का 'ञ्ञ' में परिवर्तन हो जाना। य् का ज् में परिवर्तन न होकर ज्यों का त्यों रहना। अकारान्त पुल्लिग शब्दों के प्रथमा एकवचन में ओकारान्त हो जाना आदि।

इस प्रकार संक्षेप में प्राकृतों के साथ पालि के अध्ययन से यह सहजतया आभास हो जाता है कि पालि को किसी एक प्राकृत से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता अपितु सभी प्राकृतों के तत्त्व पालि में पाये जाते हैं। प्रान्तीय अन्तर के कारण भी इसमें विविधता पाई जाती है। पर इस अध्ययन से ऐसा लगता है कि प्राचीन आर्य-भाषा अर्थात् वैदिक संस्कृत के काल में जो जन साधारण की बोलियाँ प्रचलित थीं उसी में इन दोनों महापुरुषों ने अपना उपदेश दिया था और प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में परिवर्तन के कारण मध्य भारतीय आर्यभाषा युग का उदय हुआ और इसी से पालि एवं प्राकृतों का उदय हुआ। दूसरी बात जो इससे स्पष्ट होती है, वह यह कि वैदिक भाषा की दुरूहता के कारण इसमें अनेक परिवर्तन हुए और इसी के फलस्वरूप पालि (मगध या मध्यमण्डल की भाषा) का उदय हुआ इसी का क्रमशः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रान्तों और प्रदेशों के परिवर्तन के कारण विकास होता गया, जिसके फलस्वरूप प्राकृतें उद्भूत हुईं, तदनन्तर इन सबों की स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता को नियमन करने के लिए पाणिनी ने संस्कृत व्याकरण की रचना की, जिससे भाषा की एकरूपता बनी जो संस्कृत कहलायी। इस प्रकार वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, संस्कृत यह क्रम ठीक हो सकता है। यह कहाँ तक सही है इस पर विद्वान् लोग विचार करेंगे।

श्रमण संस्कृति का प्रचार-प्रसार इन्हीं दोनों भाषाओं के माध्यम से हुआ इसीलिए इनको श्रमण संस्कृति का प्रतीक कहा जा सकता है। ऊपर के विचारों से यह ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा के प्रयोगों की कठिनता के कारण जो परिवर्तन हुए उसके फलस्वरूप ही भाषा में सरलता आयी, जिसका रूप अशोक के शिलालेखों की भाषा तथा पालि में दिखलाई पड़ता है और इसी का विकास अन्य प्राकृतों के रूप में पाया जाता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पालि को प्राकृत से अलग नहीं किया जा सकता वरन् पालि ही प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है यह कहा जा सकता है। बाद में इसका विकास होता गया और विभिन्न प्रादेशिक बोलियों के कारण मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची आदि नाम दे दिये गये।

कुछ विद्वानों ने पालि भाषा को जनसाधारण की बोली नहीं होने की आशंका की है। यह सही भी हो सकता है क्योंकि जिस समय पालि बोली के रूप में प्रचलित होगी उस समय उसका रूप कुछ भिन्न अवश्य रहा होगा पर बाद में साहित्य की भाषा हो जाने पर उसके रूपों में परिवर्तन एवं संशोधन भी अवश्य हुए होंगे। दूसरी बात यह है कि ये भाषाएँ जनसाधारण की बोलियाँ रही होंगी। यह तो उन महापुरुषों द्वारा समर्थित है। भगवान् बुद्ध ने अपनी-अपनी भाषा में ही धर्म को सीखने और समझने की आज्ञा दी थी। जिसके फलस्वरूप ही इन भाषाओं में विविधता एवं अनेक-रूपता है, साथ ही त्रिपिटक में विज्ञजनों से लेकर स्त्रियों एवं बच्चों तक को पालि में संलाप करते दिखाया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि पालि कभी जनसामान्य की भाषा अवश्य रही होगी, जिसे बाद में कुछ संशोधनों के साथ साहित्यिक रूप दे दिया गया होगा। जो आज पालि त्रिपिटक के रूप में विद्यमान है।

पालि एवं थेरवाद विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी, उत्तरप्रदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org